IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रेमचंद के साहित्य में मानवतावादी जीवन–दृष्टि

डॉ0 सीमा सिंह, सहायक प्रोफसर, हिन्दी विभाग, दयानंद महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत।

प्रेमचंद का कथा–संसार किसी भी दृष्टि से बंधा हुआ संसार नहीं है। यह निरन्तर विकसित होता हुआ, सृजित होता हुआ संसार है। इसमे किसी एक दौर को, एक पक्ष को भरा–पूरा और संपूर्ण समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए। इसके किसी एक दौर या एक पहलू को उनके कृति–व्यक्तित्व और कृतियों के लिए अंतिम रूप से सत्य या प्रतिनिधित्वपूर्ण मान लेने वाली निगाह पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए। उनकी रचनात्मक विकास–यात्रा को देखते हुए कहा जा सकता है कि वे एक पेड़ की तरह हैं जो बाहर से हवा–पानी लेता हुआ लगातार फलता–फूलता है। उन्होंने हिन्दी भाषा में विशाल साहित्य निर्माण किया, जिसमें 300 से अधिक कहानियाँ, 15 से अधिक उपन्यास, नाटक और विभिन्न विषयों पर निबंध लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में योगदान दिया। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने मानवीय अस्मिता और गरिमा को स्थापित करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस निस्सार सांसारिकता के बीच सम्बंधों की ऊष्मा और मनुष्य की अस्मिता को बचाने की पुरजोर कोशिश की है। प्रेमचंद मनुष्य में छिपे देवता को देखते थे। मनुष्य और मनुष्य के बीच पैदा हुई जातिगत, धर्मगत, स्वार्थगत दीवारों को तोड़ते हुए मनुष्यों को उन्होंने इसी मानवतावादी दृष्टि से देखा है।

प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के कथाकारों में उच्च स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा में विशाल साहित्य निर्माण किया, जिसमें 300 से अधिक कहानियाँ, 15 से अधिक उपन्यास, नाटक और विभिन्न विषयों पर निबंध लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में योगदान दिया। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने मानवीय अस्मिता और गरिमा को स्थापित करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस निस्सार सांसारिकता के बीच सम्बंधों की ऊष्मा और मनुष्य की अस्मिता को बचाने की पुरजोर कोशिश की है। प्रेमचंद मनुष्य में छिपे देवता को देखते थे। मनुष्य और मनुष्य के बीच पैदा हुई जातिगत, धर्मगत, स्वार्थगत दीवारों को तोड़ते हुए मनुष्यों को उन्होंने इसी मानवतावादी दृष्टि से देखा है। 'गोदान' का होरी अपनी गाय को जहर खिलाकर मारने वाले भाई को क्षमा ही नहीं कर देता, उसकी पत्नी की जिम्मेदारी भी उठाता है। अपने पुत्र गोबर द्वारा गर्भवती बनायी गई विधवा झुनिया को होरी और धनिया दोनों स्वीकार करते हैं, सिलिया चमारिन को अपने घर में आश्रय देता है। इस प्रकार प्रेमचंद को आध्यात्मिक भोजन व्याहारिक भोजन से कम प्रिय नहीं था। उनको आध्यात्मिक भोजन इस जीवन और जगत के धरातल पर ही उपलब्ध होता था।[1]

उनके साहित्य में सबसे विशाल है उनका कथा–संसार। सरलता का नैसर्गिक स्फोट जो उनकी कहानियों की आंतरिक लय में निबद्ध है, वह उतनी ही गहनता के साथ मानव चरित्र की अनेकायामी परतों को खोलता है। प्रेमचंद की पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' से लेकर उनकी आखिरी दौर की कहानियों, 'कफन', 'पूस की रात' और 'शतरंज के खिलाड़ी' तक तथा अपने उपन्यासों, 'सेवासदन' से लेकर 'मंगलसूत्र' तक वे निरन्तर साहित्यिक विकास की प्रक्रियाओं में से गुजरते गये और उसी क्रम में उनकी मानवीय एवं सामाजिक दृष्टि परिपक्व होती चली गई। उनका यह विकास कलात्मक धरातलों से लेकर वैचारिक स्तरों और दृष्टिकोणों तक देखा जा सकता है। इन कथाओं में स्थितियों के सहज आदर्शीकरण के बजाय उनका बेहद सटीक चित्रण हुआ है साथ ही उनमें स्थितियों के सहज प्रत्यक्षीकरण द्वारा सामाजिक यथार्थ को झलकाने की अद्भुत् सामर्थ्य है। उदाहरण के लिए 'स्वाधीनता' शुरू से ही प्रेमचंद की रचनाओं का केन्द्रवर्ती तत्त्व ही नहीं रहा बल्कि उनकी जीवन पद्धति का भी अंग रहा। स्वाधीनता आन्दोलन को उन्होंने देखा और समझा ही नहीं था, उसमें सक्रिय भाग भी लिया था। इसे उन्होंने सामाजिक स्थिति और चेतना के साथ सम्बद्ध करके देखा था। इसीलिए स्वातन्त्र्य–चेतना उनकी रचनाओं की थीम ही नहीं है, उनमें रची–बसी हुई है। यह प्रेमचंद की मूल्यगत और रचनागत प्राथमिकता और प्रतिबद्धता का सबूत है।[2]

सतही तौर पर देखा जाये तो 'ईदगाह' कहानी अबोध हामिद की समझदारी, हाजिरजवाबी और सूक्ष्म संवेदना की कहानी लगती है जो चिमटे की खरीद के जरिए बूढ़ी दादी के हृदय में वात्सल्य रस का उद्रेक कर पाठक को रसविभोर का देती है।[3] परन्तु इसमें हामिद एक ऐसे व्यक्ति के रूप में भी चित्रित हुआ है जो विपरीत परिस्थितियों से जूझकर अपने लिए राह बनाना जानता है। विकराल गरीबी की मार सहते हुए, जिस अबोध ने जीवनभर भरपेट रोटी न खाई हो, उसे मेले की रंगीनियों और लाभ–लिप्साओं से निःस्पृह रह कर अपनी कुल जमा–पूंजी दूसरों के लिए निवेश करना, उसकी विवेकशीलता, परिपक्व जीवन दृष्टि और वाक्पटुता का प्रतीक बन जाता है। यह दृष्टि उसे बाजार की रंगीनियाँ, उपभोक्तावादी संस्कृति में लालच के स्खलन और रपटन से चेताती हुई मनुष्य बने रहने का आग्रही दबाव डालती हैं।[4] उनकी 'पंच–परमेश्वर' कहानी मनुष्य की आंतरिक अच्छाई पर प्रकाश डालते हुए इस विश्वास को प्रकट करती है कि पंच की जबान पर ईश्वर का बास होता है, पंच न किसी का दुश्मन होता है और न दोस्त। उसके लिए पक्षपातरहित न्याय सर्वोपरी होता है। जब खाला जुम्मन को पंचायत की धमकी देती है तो जुम्मन खुश होता है.....जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ जाते देखकर मन ही मन हंसता है.....[5] और जब उसे पता चलता है कि न्याय करने वाला पंच उसका दोस्त अलगू चौधरी है तो वह फैसला अपने हक में होना तय मान लेता है, परन्तु जब फैसला उसके विरुद्ध आता है तो वह बदले की भावना से भर जाता है। वह अलगू से दोस्ती भी खत्म कर लेता है। कुछ समय बाद वह स्वयं एक पंच के रूप में चुना जाता है। वह सोचता है कि अब वह अपना पुराना बदला लेकर रहेगा। लेकिन कहानी की सुदंरता यहीं पर निखर कर सामने आती है। फैसला करने के समय जब वह पंच में परमेश्वर का वास महसूस करता है। वह सारे पक्षों को सुनने के बाद अलगू के पक्ष में फैसला लेता है। वह पाठकों के सामने सिद्ध कर देता है कि पंच तो परमेश्वर होता है, ना किसी का दोस्त और ना किसी का दुश्मन। शायद ही कोई पाठक होगा जो इस कहानी और उसके मूल तत्व से अछुता रहा हो। यही विशेषता प्रेमचंद को अपने समय से आगे का लेखक बनाती है। प्रसिद्ध आलोचक रामेश्वर शुक्ल अंचल लिखते हैं, 'प्रेमचंद की कहानियाँ धीरे–धीरे मुझे किसी ऐसे देवता के मन द्वारा लिखी गई मर्म व्यथाएं लगने लगीं जो इंसान को प्यार करती हैं, सब के दुःख–दर्द में पहुंच कर उसे अपने अंतस्तल की संवेदना दे देना चाहती हैं परन्तु खामोशी के साथ, बिना बताए, छिपे–छिपे।'[6]

कहानियां सजगता से कभी–कभी रचनाकार को अतिरिक्त ढ़ंग से सायास होने के लिए बाध्य करती हैं जिससे रचना में वैचारिक आग्रह गांठों की तरह अलग–अलग दिखने लगते हैं। कथाकार के लिए सजगता और सहजता को एकसाथ निभा पाना अक्सर मुश्किल होता है। प्रेमचंद की रचनात्मक क्षमता का सबूत यह है कि उनकी रचनाएं अपनी पृष्ठभूमि में वैचारिक सजगता को झलकाते हुए भी अपनी सहजता पर आंच नहीं आने देती हैं। [7]

प्रेमचंद की सोच यात्रा का पहला आधार है देशभक्ति। वह देशभक्ति–जिसमें देश की अवाम की बारीक पहचान हो। सरकारी नौकरी में रहते हुए उन्होंने आरम्भ में 'सोजे–वतन' की जो कहानियाँ लिखीं, उनका प्रेरक मूल्य यही था। वे गल्प शैली में कहानियाँ रचते, देश–विदेश के प्रचलित कथा–प्रसंगों को अपने ढ़ांचे में तैयार करते और निष्कर्ष इस तरह देते– 'खून का यह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।'[8] साथ ही उन्होंने देशभक्ति को ग्रामीण जनता के साथ भी जोड़ा। वे स्वयं ग्रामीण किसान थे। किसानों की जिन्दगी का गहरा साक्षात्कार उन्होंने किया था। जमींदारों, राय बहादुरों, साहूकारों तथा सरकारी अधिकारियों का मारा, दीन–हीन किसान, रोज मृत्यु से जूझता, अपनी अटूट जिजीविषा के बल पर श्रमजीवी गरीब किसान, उनकी संवेदना के रेशे–रेशे में घुल गया था। धरती की बंजरता से टकराकर मौसम के मर्मान्तक प्रहारों के बीच किसान की सूखी हुई जिन्दगी और मखमली गद्दीयों में आदेशों और आशीर्वादों के सहारे जीने वालों का अन्तर प्रेमचंद की आंखों के सामने था।

उनका कथा–संसार पाठक के मन में निराशा के बजाए आशा का संचार करता है। वह प्रगतिशील आहट को महसूस करते हुए देख पा रहे थे कि समाज बदल रहा है, जागरुकता की नई करवट ले रहा है। उन्हें पता था कि गाँवों की रूढ़ियाँ, गुलामी, जड़ता, कायरता और शोषण के नये–नये पैंतरें एक तरफ है तो दूसरी तरफ इनके खिलाफ सुगबुगाते नये स्वप्नों का मर्म भी है। उनके समय में देश की राजनीति में किसानों ने दिलचस्पी लेनी आरम्भ कर दी थी, जो इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। अछुतों तक यह जानकारी जा चुकी थी कि वे भी मनुष्य हैं और उनके अधिकार समान हैं, विधवाएं समझ गई थीं कि अन्याय की रचना ईश्वर ने नहीं, चंद स्वामियों ने की है, दहेज प्रथा की शिकार किशोरियाँ तथा कर्ज के शिकार गरीब जो राजनीति में न केवल सहानुभूति के पात्र थे अब वे अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हो रहे थे। प्रेमचंद ने इस जागरुकता के लिए आदर्शवाद की तलाश की। उन्होंने लिखा कि, 'यथार्थवाद यदि हमारी आंखे खोल देता है तो आदर्शवाद में बहुत गुण हैं। पर साथ ही वहां इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की पूर्ति मात्र हों–जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण–प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।[9] प्रेमचंद इस खतरे से परिचित थे कि यथार्थ के भीतर से ही जन्मा आदर्श, वास्तविक न होने पर थोपे गये सिद्धांत रचना को अविश्वसनीय बना देते हैं। रचना–प्रक्रिया की शर्तों से गुजरे बिना गरीबों के प्रति करुणा की भी कहानी उबाऊ हो सकती है। वह उसे गरीबों से दूर ले जा सकती है।[10] वह उस चालबाजी को समझते थे और इसीलिए उन्होंने संस्कृति जैसे शब्दों

के खतरनाक इस्तेमाल की ओर ध्यान दिलवाते हुए अपने लेख में लिखा, 'साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भाँति, जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल में जानवरों पर रोब जमाता फिरता है, संस्कृति की खाल ओढ़कर आती है।'[11] भौतिकतावाद और पूंजीवाद से गुजर रही दुनिया में वह विश्व में बढ़ती हुई पूंजी की ताकत को पहचानते हुए कहते हैं कि, 'अब संसार में केवल एक संस्कृति है और वह है आर्थिक संस्कृति।'[12]

प्रेमचंद का सम्पूर्ण लेखन एक लेखक के संवेदनशील मन का प्रमाण है। प्रेमचंद में जो मानवीय संवेदना है उसी के कारण वे अपने चरित्रों को इतनी सहानुभूति दे सके हैं और स्थितियों को इतनी मार्मिकता के साथ अंकित कर सके हैं। प्रेमचंद ने कभी किसी राजनीतिक प्रतिबद्धता की बात नहीं की है और ना ही किसी राजनीतिक दल से जुड़े। यदि कभी बात की भी है तो गांधी के साथ अपने को जोड़ा है। लेकिन गांधीवाद के साथ भी उनक मन का शत् प्रतिशत मेल नहीं खाता। वस्तुतः उनका साहित्य प्रगतिशील है और मानव का पक्षधर है। उनकी मूल चिंता मनुष्य की बेहतर जिन्दगी की चिंता है। वे दलित, शोषित, पीड़ित मनुष्यता की वकालत करते हैं। लेकिन यह सब वे किसी 'वाद' के तहत नहीं करते, अपनी सहज संवेदना के वशीभूत होकर करते हैं। प्रेमचंद ने जो कुछ सीखा था सीधे जिन्दगी से सीखा था।[13]

प्रेमचंद ने राजनीति को अछूत और अवांछनीय कभी नहीं माना, वह साहित्य, समाज और राजनीति को एक कड़ी के रूप में देखते थे। वे साहित्य की तरक्की पर समाज और राजनीति को निर्भर मानते थे। वे इन तीनों को साथ–साथ चलने वाली चीजें मानते थे। शिवरानी देवी के यह पूछने पर कि,' क्या यह जरुरी है कि तीनों को साथ लेकर ही चला जाए?' प्रेमचंद प्रत्युत्तर में कहते हैं कि इन तीनों का उद्देश्य जब एक ही है तो साहित्य, समाज और राजनीति का संबंध अटूट है। समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानि–लाभ और सुख–दुख होता है, वह भी व्यक्तियों पर पड़ता है। साहित्य से लोगों का विकास होता है, साहित्य से मनुष्य के विचार अच्छे या बुरे बनते हैं, इन्हीं विचारों को लेकर मनुष्य जीता है। इन तीनों चीजों की पैदावार का कारण मनुष्य है।[14] उन्होंने संस्कृति, साहित्य, सभ्यता, धर्म, राजशक्ति आदि को सामाजिक उपकरण ही समझा और इन सब को समाज के सामूहिक जीवन की अभिव्यक्ति माना।[15]

प्रेमचंद का कथा–संसार किसी भी दृष्टि से बंधा हुआ संसार नहीं है। यह निरन्तर विकसित होता हुआ, सृजित होता हुआ संसार है। इसमे किसी एक दौर को, एक पक्ष को भरा–पूरा और संपूर्ण समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए। इसके किसी एक दौर या एक पहलू को उनके कृति–व्यक्तित्व और कृतियों के लिए अंतिम रूप से सत्य या प्रतिनिधित्वपूर्ण मान लेने वाली निगाह पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए। उनकी रचनात्मक विकास–यात्रा को देखते हुए कहा जा सकता है कि वे एक पेड़ की तरह हैं जो बाहर से हवा–पानी लेता हुआ लगातार फलता–फूलता है लेकिन जिसे केवल टहनियों या फूल–पत्तियों या तने के रूप में अलग–अलग करके नहीं, संपूर्ण रूप में ही पहचाना जा सकता है।[16]

प्रेमचंद ने अपने अधूरे उपन्यास 'मंगलसूत्र' में देवकुमार का आत्ममंथन दिखाते हुए अपनी बदली हुई मानसिकता को इस प्रकार खोला है,'देवता वह है जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जान कर अनजान बनता है तो धर्म से गिरता है और अगर उसकी आंखों में यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी। वह देवता तो किसी भी तरह नहीं है। देवताओं ने ही भाग्य, ईश्वर और भक्ति की मिथ्या–धारणाएं फैलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। अगर मनुष्य ने अब तक इसका अन्त कर दिया होता या ऐसे समाज का ही अंत कर दिया होता तो इस दशा में जिन्दा रहने से कहीं अच्छा होता। नहीं, मनुष्यों को मनुष्य बनना पड़ेगा।[17]

प्रेमचंद का रचना संसार अपने समाज की हालत और सामाजिक दुख–दर्द से जुड़ा हुआ संसार है। सामाजिक शोषण और अन्याय के विरुद्ध एक निश्चित रवैया और विचार उनकी कृतियों में मिलेगा–किसी में कम मुखर, किसी में ज्यादा। सामाजिक विषमता के मूल कारणों को जानने–समझने की प्रवृत्ति उनमें शुरू से थी।

प्रेमचंद मनुष्य की सद्प्रवृतियों में गहरी आस्था रखने वाले लेखक हैं। उनकी ज्यादातर कहानियाँ उनके इसी विश्वास को प्रकट करने वाली कहानियाँ हैं, कि आत्यंतिक रूप से मनुष्य कभी बुरा नहीं होता और न ही उसके सुधार और विकास की संभावनाएं कभी निःशेष होती हैं। ऐसा नहीं है कि वह आदमी की क्षुद्रताओं को नहीं देखते लेकिन उन पर अपने को केन्द्रित न करके, उनकी एक झलक मात्र देकर आगे बढ़ जाते हैं। इसीलिए उनकी इन कहानियों का रचना संसार अधिकांश में छल–छद्म से मुक्त, भोले, निश्चल और आस्थावान लोगों का संसार है। अगर किसी कारणवश उनमें से कुछ पात्र बहकते भी हैं तो फिर जल्दी ही वे अपनी गलती स्वीकार करके, एक गहरे पश्चात्ताप की भावना के साथ, ठीक रास्ते पर आ जाते हैं। इसके लिए लेखक के रूप में जहां मानवीय सद्प्रवृत्तियों में उनकी आस्था जिम्मेदार है वहीं गांधीवाद का हृदय–परिवर्तन वाला सिद्धांत भी उन्हें इस दशा में गहराई से प्रभावित करता दिखाई देता है। इसी दौर में उनकी प्रतिनिधि कहानियों में 'बड़े घर की बेटी', नमक का दारोगा, दुर्गा का मंदिर, सज्जनता का दंड, पंच–परमेश्वर और बड़े भाई साहब आदि को लिया जा सकता है।

प्रेमचंद सच्चे अर्थों में एक मानवतावादी लेखक थे। मनुष्य पर मनुष्य द्वारा किया जाने वाला अत्याचार उन्हें बेचैन करता है। समाज का हर कमजोर वर्ग जो शोषित और उत्पीड़ित होता है, प्रेमचंद की सहानुभूति और उनकी लेखनी

का विषय बना है। कहना न होगा कि भारतीय समाज में किसान, मजदूर, अछूत, नारी और बालक–ये सब आज भी उपेक्षित हैं और प्रेमचंद ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में इन सब की वकालत अपने समय में खूब की है। 'हतभागे' किसान शीर्षक अपनी टिप्पणी में वे लिखते हैं, 'भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वह हैं जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मुहताज हैं, जैसे गांव के बढ़ई, लुहार, कुम्हार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूतियाँ हैं, वह इन्हीं किसानों और मजदूरों की मेहनत का सदका हैं। हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज, हमारी अदालतें और कचहरियां सब उन्हीं की कमायी के बल पर चलती हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं, भरपेट अन्न को तरसते हैं, जाड़े–पाले में ठिठुरते हैं और मक्खियों की तरह मरते हैं।[18]

कोई लेखक अपने समय की सच्चाइयों के प्रति जितना ही समर्पित होगा उतना ही अपने पूर्ववर्ती से अलग होगा और उतना ही वह अनुकरणवादियों की अपेक्षा उनके निकट होगा। मुख्य बात अपने समय की सच्चाइयों की पहचान और उस से जुड़ना है। यह आसान नहीं होता। यह लेखक के सामने बहुत बड़ी चुनौति है। प्रेमचंद ने इस चुनौती को स्वीकार किया था।[19] उन्होंने अपने समय के यथार्थ को अपने कथा–संसार में प्रकट किया पर आदर्शवाद के साथ। वह भली प्रकार समझते थे कि समाज के लिए न तो कोरा यथार्थ और न ही कोरा आदर्श फलदायी हो सकता है, दोनों का सम्मिलन ही उसे नई दिशा दे कर आगे बढ़ा सकता है।[20]

सन्दर्भ सूची :

1.तिवारी, विश्वनाथप्रसाद, प्रेमचंद, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–22।

2.मोहन,नरेन्द्र प्रेमचंदःकृति–व्यक्तित्व और कथा–संसार, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–72।

3.अग्रवाल, डॉ. रोहिणी, कथाक्रम (भूमिका), खाटू श्याम प्रकाशन, रोहतक, 2012, ,पृष्ठ–20।

4.अग्रवाल, डॉ. रोहिणी, कथाक्रम (भूमिका), खाटू श्याम प्रकाशन, रोहतक, 2012, पृष्ठ–21।

5.प्रेमचंद, मुंशी,मानसरोवर भाग–7, पंच–परमेश्वर, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, दिल्ली, 2012, ,पृष्ठ–153।

6.सं. पांडेय,दयानंद, प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचनादृष्टि, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृष्ठ–29।.

7. तिवारी, विश्वनाथप्रसाद, प्रेमचंद, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–15।

8. प्रेमचंद, मुंशी, सोजे–वतन, दुनिया का सबसे अनमोल रत्न कहानी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013, पृष्ठ–19।

9.प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2017, पृष्ठ– 63।

10.प्रसाद, कमला, प्रेमचंद की सामाजिक चेतना, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–28।

11- प्रेमचंद, मुंशी, साम्प्रदायिकता और संस्कृति, जागरण, 15 जनवरी 1934।

12.प्रेमचंद, मुंशी, साम्प्रदायिकता और संस्कृति, जागरण, 15 जनवरी 1934।

13.तिवारी, विश्वनाथप्रसाद, प्रेमचंद, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–15।

14.देवी शिवरानी,प्रेमचंद घर में, नई किताब प्रकाशन, 2019, पृष्ठ–167।

15. सं. पांडेय,दयानंद, प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचनादृष्टि, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृष्ठ–31 ।

16. तिवारी, विश्वनाथप्रसाद, प्रेमचंद, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–22।

17.मोहन,नरेन्द्र प्रेमचंदःकृति–व्यक्तित्व और कथा–संसार, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–72।

18.अमृतराय, प्रेमचंद–विविध प्रसंग, खण्ड–2, लोकभारती प्रकाशन,, नई दिल्ली, 1962, पृष्ठ–446।

19.सं. पांडेय,दयानंद, प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचनादृष्टि, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृष्ठ–46 ।

20.तिवारी, विश्वनाथप्रसाद, प्रेमचंद, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–22।